द्वितीय अध्याय

अ) प्रतीक का उद्भव,

ब) प्रतीक नाटक की परिभाषा,

क) हिन्दी नाट्य-साहित्य में प्रतीक नाटकों का अभ्युदय,

ड) नाटकीय तत्वों की दृष्टि से प्रतीक नाटक,

इ) प्रतीक नाटकों का वर्गीकरण ।

द्वितीय अध्याय

प्रतीक का उद्भव

अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए आदि कालीन मानव ने भाषा को जन्म दिया था, किंतु जब यह साधारण भाषा उसकी कतिपय विशिष्ट अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने में पंगु हो गयी, तब उसने अपनी इन अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया । इस प्रकार जब से मानव के अनुभवगत भावों को अभिव्यंजना शक्ति की उपलब्धि हुई, तभी से प्रतीकों का उद्भव और उनका इतिहास भी प्रारंभ हो जाता है । मानव के समक्ष जो जो वस्तुएँ आयीं, उनके रूप, गुण और स्वभाव को प्रेषणीय बनाने के लिए, उसने उन्हें नाम प्रदान किये । ये नाम उन वस्तुओं के संकेत ही कहे जा सकते हैं और कुछ नहीं । किंतु कला के इतिहास में प्रतीकपध्दति का विकास सौंदर्य भावना से संबंधित है । कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में प्रतीकपध्दति का प्रथम चित्र हमें मिश्र की प्राचीन चित्रलिपियों में मिलता है ।

साहित्यिक प्रतीकों का प्राचीनतम उपलब्ध स्वरूप हमें वेदों में मिलता है । वैदिक देव-देवियों, उनके रूपाकार, वाहनादि में प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । ब्राह्मण ग्रंथों में यदि कर्मकाण्ड के क्षेत्र में प्रतीक-पध्दति को महत्व प्राप्त हुआ है,

तो उपनिषदों में अध्यात्मक्षेत्र में प्रतीकों को अभिव्यंजना का माध्यम बनाया गया है।[१]

प्रतीक नाटक की परिभाषा --

प्रतीक नाटकों की परंपरा हिंदी में बहुत पुरानी है। इसके पुराने रुप को दृष्टि में रखकर अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। और विद्वानों ने आधुनिक - प्रतीक नाटकों को भी नये सिरे से परिभाषित करना प्रारंभ कर दिया है। हिन्दी में संस्कृत के 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटय-रुपक के आधार पर लिखे गये नाटय-रुपकों का अस्तित्व पहले से ही पर्याप्त मात्रा में है। अत: अधिकांश परिभाषाएँ इन्हें दृष्टि में रखकर दी गई हैं।

(१) डॉ.दशरथ ओझा लिखते हैं -- इस शैली की प्रथम विशेषता मानव मन के सूक्ष्म तत्वों को,पात्रों के रुप में प्रदर्शित करके अध्यात्म के दुर्जय रहस्यों को बोधगम्य बनाने के प्रयास में झलकती है।'[२] इससे स्पष्ट है, कि पुरानी शैली के प्रतीक-नाटक विशिष्ट रुप में आध्यात्मिक तत्वों के सहज विश्लेषण के लिए ही लिखे जाते थे।

(२) डॉ.बलदेव उपाध्याय का विश्लेषण है --' संस्कृत साहित्य में एक नये प्रकार के पात्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें श्रध्दा-भक्ति आदि अमूर्त पदार्थों को नाटकीय पात्र बनाया गया है। कहीं तो केवल अमूर्त पदार्थों की ही मूर्त कल्पना उपलब्ध होती है और कहीं पर मूर्त-अमूर्त का मिश्रण। साधारण नाटक के लक्षणों से इनमें किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं मिलता, इसीलिए नाटक के लक्षण कर्ताओं ने इसका पृथक् वर्गीकरण नहीं किया है।[३]

---

१ डॉ.सरोजनी पाण्डेय - हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना -पृ.क्र.३४।
२ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक,उद्भव और विकास -पृ.क्र.१२८।
३ डॉ.बलदेव उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का इतिहास -पृ.क्र.५९२।

(३) डॉ.सावित्री स्वरुप ने भी प्रतीक नाटकों को पुरानी दृष्टि से ही देखा है। `प्रतीक नाटकों में नाटककार अपनी मनोवृत्तियों को विभिन्न रूपों, पात्रों का स्वरुप देकर रुचि को संतुष्ट करता है। इस प्रकार नाटककार रहस्यमय ढंग से अपने उद्देश्य को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। रहस्यमय उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की शक्ति एवं प्रौढता अनिवार्य है।`[१]

(४) डॉ.मोहन अवस्थी के अनुसार `प्रतीक-नाटक वे हैं, जिनके पात्र विशेष भाव या विचार के पर्याय होते हैं।`[२]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट बोध होता है, कि ये परिभाषाएँ, पुरानी प्रतीकशैली में लिखे गये नाट्य-रूपकों को दृष्टि में रखकर दी गई हैं। इन रुपकों में मानव मन के भावों, विचारों या तत्वों को पात्र बनाया गया है। ऐसे नाटकों में कहीं कहीं मानवीय और मानवी कृत पात्र मिश्रित रुप में लाये गये हैं। भारतेंदु युग के इस प्रकार के प्रतीक नाटक मंचीय हैं, लेकिन प्रसादयुगीन प्रतीक नाटक तो रंगमंच के व्यवहार पक्ष से दूर, केवल सुपाठ्य है।

आधुनिक नूतन प्रतीक शैली के नाटक लोक-धर्मी परंपराओं के पोषक हैं और आधुनिक जीवन और जगत् की यथार्थ समस्याओं, विसंगतियों और वास्तविकताओं को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनमें पौराणिक, पारंपरिक, नवनिर्मित आदि सभी प्रकार के प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। आधुनिक प्रतीक नाटकों में आधुनिक संदर्भों को ही सशक्त रुप में सम्प्रेषित करने के लिए प्रतीकों का व्यवहार होता है। ये प्रतीक सहज अभिव्यक्ति और बोल बनकर आते हैं। `प्रतीक तो स्वयं नाटक की प्रकृत भाषा और बोल हैं — ऐसी भाषा, जो हम नित्य प्रति के जीवन में बोलते हैं।`[३] अत: प्रतीक नाटक आज के जीवन से सीधे जुडे हुए हैं और उसी जीवन संदर्भ का सहज संकेत बनकर प्रतीक आते हैं। `नाटक में प्रतीक का धर्म केवल यह

---

१ डॉ.सावित्री स्वरुप - नव्य हिन्दी-नाटक - पृ.क्र.२६५।

२ डॉ.मोहन अवस्थी - हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास - पृ.क्र.११३।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - भूमिका

है, कि वह संबंध बात को, तथ्य को शब्दों की अपेक्षा किन्हीं अधिक सीधे और शक्तिशाली ढंग तथा सुंदर रूप से प्रस्तुत कर सकता है।`[१]

आधुनिक प्रतीक-नाटकों को, रमेश गौतम ने आधुनिक ढंग से परिभाषित किया है -` इन प्रतीक-नाटकों में नाटककार पात्रों एवं कथा द्वारा किसी का प्रतिनिधित्व करता है, तथा पात्रों एवं प्रतीक कथा द्वारा नाटककार जिसका बोध कराता है, वही प्रमुख है, पात्र एवं प्रतीक कथा साधन मात्र।`[२]

आधुनिक नाटकों की भाषा में यथार्थ जीवन की जीवित आवाज है, लोक-धर्मी परंपराएँ हैं, मिटते और बनते हुए नये संस्कार हैं, आकर्षण और मनोरंजन की एक अभूतपूर्व मिठास है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के आधार पर चलते आधुनिक प्रतीक नाटक अपनी विशिष्ट पहचान बना सके हैं और इनका नित्य नवीन प्रयोगशील स्वप्न देखने में आ रहा है, इसलिए प्रतीक नाटकों को किसी स्थायी परिभाषा में नियंत्रित कर सकना संभव नहीं हो सकता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रतीक नाटक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -- प्रतीक नाटक, शब्दों की अपेक्षा प्रतीकों के माध्यम से अधिक सशक्त रूप में सम्प्रेषित होने वाला नाट्य-शिल्प है। इसमें प्रतीक दुहरे अर्थ में न होकर संपूर्ण रूप में व्यंजित होते हैं और वस्तु की धारणा सूक्ष्म एवं आधार समष्टिमूलक होता है। इसकी भाषा बोलचाल की होती है। आधुनिक प्रतीक-नाटक एक प्रयोगशील नाट्य शिल्प है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य में प्रतीक नाटकों का अभ्युदय

हिन्दी में प्रतीक नाटकों की परंपरा संस्कृत साहित्य से ही चली आ रही

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - भूमिका

२ डॉ.रमेश गौतम - सातवें दशक के प्रतीक नाटक - पृ.२८।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

है। पुराणों एवं महाभारत की अनेक कथाओं में प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। लौकिक संस्कृत साहित्य में अभिनय की दृष्टि से प्रतीकों का सर्वप्रथम प्रयोग नाटककार अश्वघोष (बौध्द महाकवि) ने किया। अश्वघोष के एक अनुपलब्ध अज्ञात नाटक में कीर्ति, बुध्दि, धृति आदि अमूर्त भावों को पात्र रूप में उपस्थित किया गया है। अश्वघोष द्वारा प्रतिपादित इस शैली की परंपरा में १० वीं शती तक कोई प्रतीक नाटक उपलब्ध नहीं होता। `आंशिक रूप से प्रतीक नाट्य, भास के `बालचरित` में और क्षेमीश्वर के `चंडकौशिक` में विद्यमान है। भास के `बालचरित्र` में शाप और राज्यश्री आदि प्रतीक पात्रों का प्रयोग हुआ है। सम्भव है, कृष्ण मिश्र के समक्ष ये कृतियाँ आदर्श रूप में रही हों।`[१]

`चण्ड कौशिक` में प्रतीक नाटकों की तरह अमूर्त भाव, नाटकीय पात्र के रूप में चित्रित हुआ है। हरिश्चंद्र के उपाख्यान पर आधारित यह नाटक अभिनय की दृष्टि से विशेष सफल नहीं है। `कृष्ण मिश्र के `प्रबोध चंद्रोदय` के लगभग सौ वर्ष पहले लिखे इस नाटक में प्रतीक तत्व का अनुक्रम विकास हुआ है।`[२] डॉ.ए.बी.कीथ का मन्तव्य है, कि कहा नहीं जा सकता कि कृष्ण मिश्र का `प्रबोध चंद्रोदय`, नाटक के उस रूप का (जो अश्वघोष के समय से ही एक छोटे पैमाने पर प्रयुक्त होता रहा) पुनरुज्जीवन है, अथवा एक सर्वथा नवीन रचना है, (जिसका होना सहज संभव है)`[३] ११ वीं शती का कृष्ण मिश्र रचित `प्रबोध चंद्रोदय` इसी परंपरा का एक अद्वितीय प्रतीक नाटक है, जिसका हिन्दी नाट्य-साहित्य में आगे चलकर पर्याप्त रूप से अनुकरण हुआ। भागवत विचारधारा से प्रभावित `प्रबोध चंद्रोदय` छः अंकों का एक आध्यात्मिक दु:खान्त नाटक है।`[४]

---

१ रामजी उपाध्याय - मध्यकालीन संस्कृत नाटक - पृ.क्र.१३२।

२ -- वही -- पृ.क्र.१२३।

३ डॉ.कीथ (अनुवादक - डॉ.उदयभानुसिंह) - संस्कृत नाटक - पृ.क्र.२६५।

४ रामजी उपाध्याय - मध्यकालीन संस्कृत नाटक - पृ.क्र.१३३।

इसमें नायक महामोह की विवेक या ज्ञान द्वारा पराजय का नाटकीय चित्रण किया गया है। नाटक में भावात्मक एवं अमूर्त सत्ताओं को मानवोचित व्यवहार तथा कार्य करते हुए दिखाया गया है। इसी कारण 'प्रबोध चंद्रोदय' की शैली में लिखे गये प्रतीक नाटकों को विद्वानों ने भावात्मक नाटक की संज्ञा से भी अभिहित किया है।'[1]

'प्रबोध चंद्रोदय' के पश्चात् भी संस्कृत में भावात्मक या प्रतीक नाटकों की क्षीण परंपरा उपलब्ध होती है। इस परंपरा में जैन कवियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए 'प्रबोध चंद्रोदय' के अनुकरण पर एक नाटक की रचना की। यश:पाल (या यशोदेव) का 'मोह राज पराजय' इसी शैली में रचित एक आंशिक प्रतीक नाटक है, जिसमें राजा हेमचंद्र तथा विदूषक को छोड़कर सभी पात्र सत् एवं असत् गुणों के मानवीकृत रूप हैं।'[2]

१३ वीं - १४ वीं शताब्दी में 'प्रबोध चंद्रोदय' के कथानक को आधार बनाकर वेदान्तदेशिक (वेंकटनाथ) में 'संकल्प सूर्योदय' नामक दस अंकों के बृहद् प्रतीक नाटक की रचना की। इसे नाटक की अपेक्षा काव्य कहना अधिक उचित होगा।

चैतन्य महाप्रभु के जीवन चरित को लेकर परमानंददास ने 'चैतन्य चंद्रोदय' (१५७९ ई.) की रचना की। आनंदराय मखी (वेद कवि) के 'विद्यापरिणयन' तथा 'जीवानंदन', नल्लाध्वरी रचित 'चित्तवृत्ति कल्याण' तथा 'जीवन मुक्ति कल्याण', 'भूदेव शुक्ल का' धर्म विजय' (१७३७ ई.), रामदेव रचित 'विद्यामोदतरंगिणी' तथा महालिंग शास्त्री कृत 'कलि प्रादुर्भाव' आदि नाटक भी प्रतीक नाटकों की कोटि में आते हैं।

१८वीं तथा १९वीं शताब्दी में 'प्रबोध चंद्रोदय' के हिंदी में कई अनुवाद किये गये। उनके अतिरिक्त 'देवमाया प्रपंच', 'विज्ञान गीता' आदि नाटक भी

---

१ ब्रजरत्न दास - हिन्दी नाट्यसाहित्य - पृ.क्र.१८।

२ ए.बी.कीथ (अनु.उदयभानुसिंह) - संस्कृत नाटक - पृ.क्र.२६७-२६८।

उसी प्रसिध्द प्रतीकवादी संस्कृत नाटक की शैली पर लिखे गये हैं। इन नाटकों का मुख्य प्रयोजन किसी दार्शनिक एवं धार्मिक सिध्दांत तथा विचार तत्व की अभिव्यक्ति करके वैराग्योत्पादन तथा सांसारिकता से निवृत्ति कराना था। डॉ.दशरथ ओझा के अनुसार, `इस शैली की प्रथम विशेषता मानव मन के सूक्ष्म तत्वों को पात्रों के रूप में प्रदर्शित करके अध्यात्म के दुर्ज्ञेय रहस्यों को बोधगम्य बनाने के प्रयास में झलकती है।`[१] अत: इन रचनाओं में मन की भाववृत्तियों तथा विकारों का मानवीकरण करके, उनमें नाटकीय संघर्ष की उत्पत्ति कर, गहन दार्शनिक सिध्दान्तों का विवेचन किया गया है। इन नाटकों में सिध्दान्त प्रतिपादन एवं नैतिक और धार्मिक उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति प्रमुख है। इन नाटकों में पात्र लेखक की मान्यताओं अथवा मनुष्य की भावनाओं के प्रतीक मात्र होते हैं।

हिन्दी नाट्य-साहित्य में संस्कृत की इस प्रतीक शैली को अपनाकर चलने वाले नाटकों में जयशंकर प्रसाद विरचित `कामना`, सुमित्रानन्दन पंत विरचित `ज्योत्स्ना` चंद्रभानुसिंह विरचित `चंद्रिका`, सेठ गोविंददास विरचित `नवरस` तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी विरचित `छलना` आदि विशेष उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं।

भाव, वस्तु एवं शिल्प रीति की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी के उल्लेखनीय हिंदी प्रतीक नाटकों पर यूरोप की प्रतीक नाट्य शैली का प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी के इन आधुनिक प्रतीक नाटकों में संस्कृत के नाट्य रूपकों के समान दार्शनिक तथा धार्मिक विवेचन न होकर पाश्चात्य विचारधारा के अनुकूल मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी एवं सामाजिक समस्याओं का विवेचन अधिक है। इस धारा के विकास में रवींद्रनाथ ठाकुर, द्विजेंद्रलाल राय का महत्वपूर्ण योगदान है। रवींद्र के प्रतीक नाटकों में उनकी मौलिकता के साथ-साथ पाश्चात्य प्रतीक नाट्य-शैली का मिश्रण हुआ। रवींद्र के बहुत से नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ, जिन पर पाश्चात्य प्रतीकवादी

---

१ डॉ. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - पृ.क्र.१२८।

नाट्य-शैली का प्रभाव था । अत: पाश्चात्य साहित्य की यह प्रवृत्ति रवींद्र और राय के माध्यम द्वारा प्रकारान्तर से हिन्दी में आई ।

पाश्चात्य समस्या नाटकों की सांकेतिक प्रतीक पध्दति के अनुकरण पर हिन्दी में भी इस प्रकार के नाटकों की सृष्टि हुई है, जिनमें इब्सन, स्ट्रिण्डबर्ग तथा सण्डरमैन के समस्या नाटकों की भाँति प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हो रहा है । शिल्प की दृष्टि से ये सर्वथा नवीन प्रयोग हैं, जो हमारी भावनाओं, आदर्शों एवं विचारों की नींव पर खड़े हैं । सांकेतिक प्रतीक के माध्यम से नाटककार इन समस्या नाटकों में दोहरे अर्थों और दोहरे व्यक्तित्व के चरित्र को प्रस्तुत करता है । इन समस्या प्रतीक नाटकों के पात्र जीते-जागते क्रिया के संघर्ष में लिप्त मानव हैं, जो हमारी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों, कुंठाओं, समाज की समस्याओं तथा वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं । यथार्थवादी समस्याओं के चित्रण में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग प्रसादोत्तर युग से ही प्रारंभ हुआ तथा समसामयिक नाटककार प्रचुरता से इस प्रतीक शैली का अवलम्बन ले रहे हैं ।

नाटकीय तत्वों की दृष्टिसे प्रतीक नाटक --

प्रतीक नाटक और सामान्य नाटक में तात्त्विक दृष्टि से कोई विशेष अंतर नहीं है, परंतु सामान्य नाटक की तुलना में उसकी कुछ विशिष्ट सीमाएँ होती हैं । प्रतीक नाटक के तत्व तो वे ही सब होते हैं, परंतु उनके निर्वाह के लिए कुछ सीमाओं का पालन अनिवार्य हो जाता है । इन्हीं सीमाओं को प्रतीक नाटक का वैशिष्ट्य समझना चाहिए ।

प्रतीक नाटक का कथानक, आदि से अंत तक किसी विशेष प्रकार के परोक्ष कथ्य की ओर संकेत करता है । इसमें प्रारंभ से अंत तक दुहरे अर्थों की प्रतीक योजना दिखाई देती है । कभी कभी इसमें बाहरी अर्थ ही प्रधान और भीतरी अर्थ गौण हो जाता है ।

प्रतीक नाटक के पात्र अपने प्रतीक रुप में उपस्थित होते हैं । उनका अपना व्यक्तिगत अस्तित्व कुछ नहीं होता, क्योंकि वे उन तत्वों, विचारों और आदर्शों

के भारवाहक मात्र होते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति नाटककार को अपेक्षित है।

प्रतीक नाटकों में, उद्देश्य सबसे महत्वपूर्ण होता है। किसी न किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर नाटककार, उसे व्यंजित करने के लिए नाटक में , घटनाओं की ,पात्रों की सृष्टि करता है। कभी कभी नाटक का शीर्षक भी प्रतीकात्मक होते हुए पूर्ण रूप से नाटककार के उद्देश्य को व्यंजित करता है। उदा.- `मिस्टर अभिमन्यु`।

भाषा की दृष्टि से इन नाटकों की भाषा शैली अर्थगर्भित ,उद्देश्यपूर्ण, लक्षणा तथा व्यंजनाशक्ति प्रधान होती है। सैध्दांतिक विवेचन होने के कारण वह विचार प्रधान तथा क्लिष्ट भी हो जाती है। डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार` प्रतीक की अपनी कोई अलग भाषा नहीं होती, प्रतीक तो स्वयं नाटक की प्रकृत भाषा और सहज बोल है - ऐसी भाषा, जो हम नित्य प्रति के जीवन में बोलते हैं।`[१] नाटक में रहस्यमय उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की शक्ति एवं प्रौढ़ता अनिवार्य है। इन नाटकों के संवाद दुहरे अर्थ का निर्वाह करते हुए भी अपने विषय की परिधि में ही सीमित रहते हैं।

प्रतीक नाटकों में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा वैचारिक और मानसिक संघर्ष की प्रधानता होती है। पात्रों का संघर्ष उनकी प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का संघर्ष बनकर उभरता है।

विद्वानों ने प्रतीक नाटकों को अनभिनेय माना है , क्योंकि उसमें प्रतीकों की दुरूहता,अर्थबोध में असुविधा तथा क्षयवितता होती है। उसमें पात्रों को दोहरा बोझ ढोना पड़ता है और इसी कारण दर्शक थक जाते हैं। परंतु आधुनिक प्रतीक नाटक अभिनेयता में सफल हो गये हैं।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - भूमिका -

इस प्रकार प्रतीक नाटकों के तत्व सामान्य नाटकों के तत्वों से अलग और विशिष्ट दिखाई देते हैं। असामान्य और प्रतिभाशाली नाटककार ही इन तत्वों का निर्वाह सफलता से कर सकते हैं।

नाटक में चरित्र, घटना, दृश्य-विधान, द्वंद्व प्रवृत्ति और क्रिया के रुप में प्रयुक्त होते हुए अपनी सामूहिकता में ही वैयक्तिक सार्थकता प्राप्त करते हैं। प्रतीक नाटकों में कथावस्तु प्रतीकात्मक नहीं होती, तो प्रतीकात्मक पात्र, घटनाएँ और दृश्य संयुक्त रुप से कथावस्तु को प्रतीकार्थता प्रदान करते हैं। नाटककार पात्रों में अपनी किसी उद्देश्यगत प्रतीकात्मकता को प्रतिरोपित करता है। इसीलिए उनका स्वतंत्र अस्तित्व सीमित रहने के कारण उन्मुक्त भाव से चरित्र विकास नही हो पाता। प्रतीक नाटकों में जटिलता, अर्थगत अस्पष्टता, अमूर्तता तथा पात्रों द्वारा दुहरे दायित्व का निर्वाह होने के कारण संवाद या कथोपकथन की सारी क्षमता का प्रदर्शन प्रतीकात्मक अर्थों को व्यंजित करने में ही होता है। प्रतीक सदा वर्तमान को वर्तमान के माध्यम से या वर्तमान को अतीत के माध्यम से व्यक्त करते हैं। अत: प्रतीक नाटकों में देश काल गत सत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। कुछ नाटक वर्तमान को वर्तमान के माध्यम से व्यक्त करते हैं उदा. - डॉ.लाल के 'मादा कैक्टस', 'करफ्यू', मोहन राकेश के 'आधे अधूरे', ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'शुतुरमुर्ग' आदि। कुछ नाटक वर्तमान को अतीत या पौराणिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति देते हैं। उदा.-- धर्मवीर भारती के 'अंधा युग', जगदीश चंद्र माथुर के 'पहला राजा', डॉ. लाल के 'सूर्यमुख' आदि।

योरप के नाटककारों मेटरलिंक, इब्सन, बर्नार्ड शॉ तथा भारत के मोहन राकेश, डॉ.लाल, विजय तेन्दुलकर, गिरीश कर्नाड आदि आधुनिक नाटककारों के नाटकों का सफल मंचन सिध्द करता है, कि ये नाटक पाठ्य ही नहीं, अभिनेय भी है। इस संबंध में हिंदी के प्रतिनिधि नाटककार डॉ.लक्ष्मी नारायण लाल का मन्तव्य है --' नाटक में प्रतीक का धर्म केवल यही है, कि संवेद्य बात को, तथ्यों को

शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक सीधे और प्रभावशाली ढंग तथा सुंदर रुप से प्रस्तुत कर सकता है।'[१]

प्रतीक नाटकों का वर्गीकरण

सामान्यत: हिन्दी में प्रतीकात्मक नाटकों के वर्गीकरण का प्रयत्न नहीं के बराबर हुआ है। अभी तक जितने भी वर्गीकरण प्राप्त होते हैं, वे सभी पुरानी प्रतीक-शैली में लिखे गये प्रतीक नाटकों को दृष्टि में रखकर किये गये हैं। आधुनिक प्रतीक नाटक अभी तक वर्गीकरण की प्रक्रिया से अछूते हैं। परंतु इस दिशा में डॉ.दशरथ ओझा ने प्रारंभिक प्रयत्न किया है। उनके अनुसार 'प्रतीकात्मक या भावात्मक नाटक की कई श्रेणियाँ होती हैं। उनमें से तीन श्रेणियाँ मुख्य हैं।

प्रथम श्रेणी में नाटक की कथा रसात्मक होती है। उस कथा से नाम,रुप तथा गुण-साम्य के द्वारा जो रहस्यमय अर्थ आद्योपान्त दिखाई देता है, वह भी चमत्कारपूर्ण होता है। इनके स्वाभाविक और प्रस्तुत अर्थ में चमत्कार होता है। ऐसे नाटकों में स्थल-स्थल पर दूसरे रहस्यमय अर्थ की ओर संकेत मात्र होता है। इस प्रकार का नाटक भारतेंदु का 'विद्यासुंदर' है, जिसमें हम दूसरे अर्थ की ध्वनि पाते हैं।

दूसरी कोटि में वे नाटक हैं, जिनके प्रस्तुत और स्वाभाविक अर्थ में इतना चमत्कार नहीं होता, जितना प्रतीक का अर्थ समझ लेने पर अप्रस्तुत अर्थ में प्रतीत होता है। कृष्ण मिश्र रचित 'प्रबोध चंद्रोदय' ऐसा नाटक है।

तीसरी श्रेणी में मिश्र प्रतीकात्मक नाटक आते हैं। इसमें कतिपय पात्र मानवी होते हैं, कतिपय मानवीकरण के रुप में दृष्टिगत होते हैं। इस श्रेणी में कभी अधिक संख्या मानवी पात्रों की होती है और कभी मानवीकरण द्वारा प्रदर्शित पात्रों की। परमानंद दास विरचित 'चैतन्य चंद्रोदय' इसी कोटि का

---

१ डॉ.लाल - मादा कैक्टस - भूमिका।

नाटक है।`[१] डॉ.ओझा के इस वर्गीकरण से तीन प्रकार के प्रतीक नाटकों का बोध होता है। एक वे, जिनकी प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों कथाएँ रसात्मक होती हैं। दूसरे वे जिनकी प्रस्तुत कथा साधारण और दुहरे अर्थ में आने वाली अप्रस्तुत कथा चमत्कार पूर्ण होती है। तीसरे मिश्र प्रतीकात्मक नाटक हैं, जिनमें मानवी और मानवीकृत दोनों प्रकार के पात्र होते हैं। `चैतन्य चंद्रोदय` इस कोटि में आता है।

डॉ.श्रीपति शर्मा ने प्रतीक नाटकों के दो रुप उद्धृत किये हैं - `एक तो मनुष्य की भावना और अंतर्वृत्तियाँ मानवीकरण रुप में पात्रों का आकार धारण करके हमारे सामने आती हैं। दूसरा रुप, जिसमें चरित्र,साधारण स्त्री और पुरुष होते हैं, परंतु उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता, वे भावनाओं के प्रतीक मात्र हैं।`[२]

डॉ.सावित्री स्वरुप ने डॉ.ओझा के वर्गीकरण को उसी रुप में ग्रहण कर लिया है।`[३] परंतु यह वर्गीकरण उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें व्यापकता नहीं है। प्रायोगिक दृष्टि से प्रतीक नाटकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है --

(१) पूर्ण प्रतीक नाटक,
(२) आंशिक प्रतीक नाटक,
(३) गौण प्रतीक नाटक।

<u>पूर्ण प्रतीक नाटक</u> -- इन नाटकों में समस्त पात्र या संपूर्ण कथा प्रतीक रुप में उपस्थित होती है तथा आदि से अंत तक उसी का निर्वाह किया जाता है। इसे शुध्द प्रतीक नाटक भी कह सकते हैं। भारतेंदु रचित

---

१ डॉ.दशरथ ओझा - हिंदी नाटक - उद्भव और विकास - पृ.क्र.१७२।
२ डॉ.श्रीपति शर्मा - हिंदी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव - पृ.क्र.३७४।
३ डॉ.सावित्री स्वरुप - नव्य हिंदी नाटक - पृ.क्र.२६६।

`भारत दुर्दशा`, सेठ गोविंददास कृत `नवरस`, प्रसाद कृत `कामना`, डॉ. लाल रचित `कलंकी` इसी प्रकार की नाटयसृष्टि है।

अंशिक प्रतीक नाटक -- इनमें समस्त पात्र या संपूर्ण कथानक प्रतीकत्व उपस्थित नहीं करता, वरन् नाटकीय शीर्षक, कुछ पात्र, स्थल या घटनाएँ प्रतिनिधित्व करने वाली होती है। यहाँ नाटककार जान-बूझकर प्रतीकों का प्रयोग करता है। डॉ. लाल के रात-रानी, मादा कैक्टस, रक्तकमल इस कोटिमें आते हैं।

गौण प्रतीकात्मक नाटक -- इन नाटकों में नाटक कार किसी स्थान पर अनायास ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए या विषय स्पष्टीकरण के लिए किसी घटना, दृश्य या पात्र को प्रतीक रूप में उपस्थित करता है। उदा. `मिस्टर अभिमन्यु` में पत्थर की टूटी हुई मूर्ति, राजन के टूटे हुए दिल का प्रतीक है।

डॉ. रमेश गौतम के अनुसार - `हिंदी में उपलब्ध नाटकों का अनुशीलन करने पर विषय वस्तु और स्वभाव की दृष्टि से आलोच्य नाटकों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

(१) रूपकात्मक या मानवीकरण की प्रवृत्ति को लेकर चलनेवाले प्रतीक नाटक।

(२) ऐतिहासिक, पौराणिक या मिथकीय आयाम को लेकर चलनेवाले प्रतीक नाटक।

(३) समस्या प्रतीक नाटक।[१]

मानवीकरण की प्रवृत्ति को लेकर चलनेवाले नाटक संस्कृत की `प्रबोध चंद्रोदय` की शैली से प्रभावित हैं, तथा इनमें अमूर्त मनोविकारों को नाटकीय चरित्रों के रूप में प्रस्तुत करते हुए संघर्ष की प्रस्तुति की गई है। ऐतिहासिक, पौराणिक या मिथकीय आधार को लेकर चलने वाले प्रतीक नाटकों में सांकेतिकता विद्यमान है, जिनमें अतीत को साधन बनाकर वर्तमान की ओर संकेत है। समस्या प्रतीक नाटक

---

१ डॉ. रमेश [illegible] - सातवे दशक के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.२७।

प्रतिनिधित्व की क्षमता रखते हैं। इन नाटकों में अभिव्यक्त चरित्र तथा समस्याएँ व्यक्तिविशेष तक सीमित न रहकर वर्गविशेष तथा जातिगत आधारों से संबंधित है। विषय की दृष्टि से समकालीन नाट्य-साहित्य में दूसरी और तीसरी कोटि के नाटकोंका ही प्रचलन है।

प्रतीक-नाटकों से संबंधित उपर्युक्त तीनों वर्गीकरण में प्रथम दो वर्गीकरण केवल भारतेंदु और प्रसाद युगीन प्रतीक-नाटकों को एक दृष्टि में रखकर किये गये हैं। तीसरा वर्गीकरण हिंदी के प्रारंभिक सीमित नाटकों के अनुशीलन पर आधारित है। परंतु आज कथा-वस्तु, चरित्र, रंग कौशल और शिल्प की दृष्टि से हिंदी में प्रतीक नाटकों की उपलब्धियाँ पर्याप्त हो गयी हैं, और प्रतीक नाटकों का सृजन नित्य नये प्रयोगशील रूप में हो रहा है। आज का युग प्रयोगशील प्रतीक नाटकों का ही है।

शिल्प और वस्तु दोनों को दृष्टि में रखकर हिंदी के प्रतीक नाटकों का विभाजन निम्नलिखित रूप में भी किया जा सकता है। ---

(१) <u>समग्र रूपात्मक या पूर्णत: प्रतीक नाटक --</u>

संस्कृत की पुरानी प्रतीक शैली पर लिखे गये हिंदी के, भारतेंदु युगीन संपूर्ण प्रतीक नाटक इस श्रेणी में आते हैं। उदा.-- भारतेंदु रचित 'भारत दुर्दशा', भगवती प्रसाद वाजपेयी रचित 'छलना' प्रसाद रचित 'कामना', 'ज्योत्स्ना' आदि नाटक इस वर्ग के हैं।

(२) <u>आंशिक प्रतीक नाटक</u>

इब्सन और बर्नार्ड शॉ आदि नाटककारों से प्रभावित, पश्चिम के समस्यामूलक आंशिक - प्रतीक - शैली के नाटकों को देखकर हिंदी में भी आंशिक - प्रतीक - नाटक लिखे गये। सेठ गोविंददास का 'प्रकाश' इस श्रेणी का पहला नाटक है। उपेंद्रनाथ अश्क के नाटक 'छठा बेटा', 'स्वर्ग की झलक' 'उड़ान' आदि इस वर्ग के प्रतीक नाटक हैं।

(३) अन्योक्ति मूलक प्रतीक नाटक --

इस प्रकार के प्रतीक-नाटकों में वस्तु पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होती है। ऐसे नाटकों में वस्तु-योजना इस प्रकार की जाती है, कि अन्योक्ति के माध्यम से उससे किसी आधुनिक महापुरुष, घटना, संदर्भ या देश-काल का बोध होता है। जैसे - जगदीश चंद्र माथुर के 'पहला राजा' नाटक का संपूर्ण वृत्त, नेहरु युगीन देश-काल का बोध कराने वाला है।

(४) प्रवृत्ति मूलक प्रतीक-नाटक --

इस श्रेणी के नाटकों में भी 'वस्तु' ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होती है, लेकिन उन पात्रों के कार्यकलाप को एक शाश्वत प्रवृत्ति का रुप देकर उन्हें सार्वयुगीन बनाया जाता है। ऐसे नाटकों में मोहन राकेश का 'लहरों का राजहंस', डॉ. लाल का 'सूर्यमुख' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

(५) सांकेतिक प्रतीक-नाटक --

इस श्रेणी के प्रतीक-नाटक बहुत ही सशक्त होते हैं। इनमें कथावस्तु आधुनिक होती है और सीधे आधुनिक विसंगतियों को स्पष्ट करती है। इन नाटकों में पौराणिक अथवा आधुनिक, महत्वपूर्ण प्रतीक, प्रमुख सूत्र रुप में ग्रहण कर लिया जाता है। वह प्रतीक ही पूरी रंग प्रस्तुति में लक्ष्य को सतत संकेतित करता रहता है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रौपदी', बृजमोहन शाह का 'त्रिशंकु' आदि नाटक इस श्रेणी में आते हैं।

(६) प्रातिनिधिक प्रतीक-नाटक --

हिंदी में ऐसे प्रतीक नाटकों की संख्या बहुत अधिक है। इस प्रकार के नाटकों में चरित्र ही अपने वर्ग के प्रतीक होते हैं, और संपूर्ण रुप से एक आधुनिक संदर्भ को उजागर करते हैं। इस श्रेणी के नाटक हैं -- जगदीशचंद्र माथुर कृत 'कोणार्क', मोहन राकेश कृत 'आधे अधूरे' आदि।

(७) समानान्तर प्रतीक-नाटक --

इस प्रकार के नाटकों में किसी पुरातन विख्यात कथा या चरित्र के समानान्तर आधुनिक कथा या चरित्र को साथ-साथ विकसित किया जाता है। इसका उदाहरण है -- शंकर शेष का `एक और द्रोणाचार्य`, डॉ.लाल का `मिस्टर अभिमन्यु` आदि।

हिंदी के प्रतीक-नाटक, जीवन की वास्तविकता को अधिक सशक्त ढंग से कहने में बहुत सफल हुए हैं। अब इनमें नये नये प्रयोग हो रहे हैं।

निष्कर्ष ----

आदि कालीन मानव ने प्रतीक का उद्भव किया था। फिर वेदों में, पुराणों में इसका प्रयोग होने लगा। बाद में संस्कृत साहित्य में और अब हिंदी साहित्य में प्रतीक दृष्टिगत होने लगे। प्रतीक नाटकों के बारे में अनेक विद्वानों ने अध्ययन, चिंतन करके उनका वर्गीकरण किया, तथा नाटकीय तत्वों की दृष्टि से उनका अनुशीलन किया।